ISSN: 2349-4654, UGC: 1340-48783
नाद-नर्तन जर्नल ऑफ डांस एण्ड म्यूज़िक
वर्ष : 6, सेमिनार विशेषांक, जनवरी 2018

तबला : स्वतंत्र वादन एवं संगति

अमित सतिष खेर

शोधार्थी, तबला विभाग, महाराज सयाजीगायकवाड़ विश्वविद्यालय, बडोदा

सार-संक्षेप

प्रस्तुत शोध में यह बताने का प्रयास किया गया है कि वर्तमान समय में, एकलवादन प्रस्तुत करने की पद्धति में बदलाव आया है। घरानेदार वादन के प्रस्तुतीकरण में जो पेश होना चाहिए, वह कम सुनने को मिलता है। उसमें अब नवीन प्रयास हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त स्वर वाद्यों की संगति में, कलाकार अपनी कल्पनाशक्ति अनुसार संगति करता है, परंतु प्रत्येक वाद्य के साथ कलाकार के संगत करने कि अपनी निजी शैली होती है। वह उसी प्रकार करता भी है लेकिन कभी सफल एवं कभी असफल भी होता है। असफलता से तात्पर्य उसका संगीत में अनुभवहीनता से है या संगति करना नहीं आता। इस विचार को उजागर करने का शोधार्थी का प्रयास रहेगा। घरानेदार बंदिशे एवं उसके निकास में काफ़ी बदलाव देखने को मिलता है। इन्हीं सब के बारे में इसकी चर्चा की गई है। प्रस्तुत पत्र को लिखने के लिए माध्यमिक स्तोत्रों की सहायता ली गई है। प्रस्तुत विषय में एकलवादन, वाद्य की संगति, बाज और घराना और कलाकार की सृजनात्मक क्षमता यह चारों विषय विस्तृत है और स्वतंत्र है। परंतु इस विषय को उजागर करने का शोधार्थी का पूर्ण प्रयास रहेगा। शोधार्थी तबला विषय से संबंधित होने के कारण प्रस्तुत विषय में तबले के संदर्भ में अपने विचार उजागर करने का प्रयास करेगा।

मुख्य शब्द : स्वतंत्र वादन, संगीत, अवनद्ध वाद्य, लैहरावादक, एकलवादन

शोध-पत्र

पखावज वाद्य प्रचलन में था। उस समय ध्रुपद-धमार गायकी प्रचलन में थी। ध्रुपद-धमार गायकी के साथ पखावज वाद्य संगीत के रूप में बजता था। अपितु, पखावज स्वतंत्रवादन के लिए भी सक्षम वाद्य था। परंतु गायकी के साथ संगत करने के लिए उपयुक्त था, परंतु जैसे-जैसे संगीत का विकास होता गया वैसे ध्रुपद-धमार गायकी का स्थान 'खयाल गायन' ने लिया। खयाल गायन चंचल और नाजुक होने के कारण उस गायकी के साथ पखावज वाद्य उपयुक्त नहीं था। तब खयाल गायकी के साथ कोई अन्य वाद्य खोजने की आवश्यकता महसूस हुई, उस समय तबला वाद्य का विकास हुआ। तबला वाद्य की उत्पत्ति के बारे में इतिहास में अनेक विद्वानों ने अपने मत दिए हुए हैं। अत: यह एक सफल प्रयोग रहा। जो वर्तमान में तबला वाद्य अति आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है। वर्तमान समय में तो यह वाद्य संपूर्णत: एकलवादन और संगति के रूप में अति महत्त्वपूर्ण वाद्य है।

प्राचीन और मध्यकाल में अवनद्य वाद्यों का प्रयोजन गीत का उपरंजन करना, सौंदर्य बढ़ाना, आवश्यकतानुसार ध्वनि में मृदुता और गंभीरता लाना आदि था। क्रमश: तालवाद्यों की एवं उसके वादन की विविधता के अनुरूप तालों के निश्चित ठेकों का प्रचलन हुआ।[1]

एक ही मात्रा के अनेक तालों की रचना की गई। क्योंकि गायन की प्रकृति अनुसार वादन में भी भिन्न-भिन्न प्रकार के ठेके की आवश्यकता हुई। 19वीं सदी में तबले में विभिन्न रचना की प्रकार के वादन-शैलियों का विकास हुआ। स्वतंत्र तबला वादन (सोलो) के विविध स्वरूप तैयार हुए। जैसे पेशकार, उठान, कायदा, रेला, गत, परन, चक्रदार, कमाली टुकड़े आदि बंदिशों की बाज और शैली के अनुसार रचना की गई। तबले पर खुला और बंद बाज जैसे दो बाजों का वादन प्रस्तुत होने लगा। जो कि स्वतंत्रवादन करने के लिए तबले की प्रगति और विकास होना शुरू हुआ। कानों पर मृदु और गंभीर दोनों प्रकार की ध्वनियों की उत्पत्ति सुनाई देने लगी जो अत्यंत प्रभावशाली थी। स्वतंत्रवादन क्रमानुसार प्रस्तुत होने लगा। लय के अनुसार, अलग-अलग बंदिशों का स्थान निश्चित हुआ। एकलवादन के साथ लैहरा का भी उतना ही महत्त्व का स्थान है, जो लैहरा संगीत में प्रचार में आया। विद्वानों की परिभाषा अनुसार, तबलावादक द्वारा तबले पर लैहरा के माध्यम से उठान, पेशकार, कायदे, रेले, टुकड़े, चक्रदार, गतें, मुखड़े आदि अपनी क्षमता अनुसार विभिन्न लय-लयकारी का प्रयोग करके अपनी कला प्रस्तुत की जाए, उसे 'एकलवादन' या 'स्वतंत्रवादन' (सोलो) कहते हैं।

स्वतंत्र-वादन प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत हो, उसके लिए कई महत्त्वपूर्ण बातों का अभ्यास करना जरूरी है। जो निम्नलिखित है:[2]

1. वाद्य का चुनाव

यह महत्त्वपूर्ण चीज है कि एकलवादन करने के लिए उत्तम वाद्य होना आवश्यक होता है। जिस तबले की ध्वनि आसदार हो ऐसे तबले का चयन करना चाहिए।

वादक को अपने हाथ तथा उँगलियों के प्रमाण में छोटे, बड़े, मुखवाले तबले का चुनाव करना चाहिए। जिससे वादक को वादन करते समय कठिनाईयाँ न आए। कहीं विद्वानों के अनुसार तबले का चुनाव घरानेदार वादन के अनुसार भी किया जाता है।

पं. अरविंद मुलगांवकर के मतानुसार—काली 4 स्वर का तबला आदर्श

माना जाता है, जिससे गूँजदार आस मिलती है। सुनने में भी कर्णप्रिय लगता है। पुराने जमाने में भी विद्वान वादकों ने बड़े मुँह के तबले पर ही अपना वादन प्रस्तुत किया। वर्तमान में भी पं. सुरेश तलवलकर अपने एकलवादन बड़े मुँह के तबले पर ही करते हैं। परन्तु आज की युवा पीढ़ी खास तौर से टीप का तबला पसन्द करते हैं। अत: बंद बाज बजानेवाले वादक छोटे मुँह का तबला पसंद करते हैं। क्योंकि, उसमें मुलायम बोलों का प्रयोग होता है। दायाँ-बायाँ की ऊँचाई एक जैसी होनी चाहिए। दायाँ अच्छी लकड़ी का हो या बायाँ अच्छी धातु का हो, पुड़ी एवं स्याही का काम अच्छे कारीगर से किया हो, चाँट और थाप की आस समान हो तो एकल वादन प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत हो सकता है। समय पर तबले की खींच भी योग्य रूप से होनी आवश्यक है। बाएँ का स्वर, दाएँ के स्वर के अनुरूप प्रमाण में रखा जाता है, जिससे की दोनों का संतुलन योग्य हो। जिस वाद्य पर एकलवादन करना हो, वह वाद्य स्वयं हाथ से रियाज में होना अति आवश्यक है। जिससे वादन असरकारक होता है। नए बने हुए वाद्य का एकदम से उपयोग नहीं करना चाहिए। अत: वाद्य का चुनाव तो आवश्यक है परन्तु नियमित रियाज़ की एकलवादन में चमक दिखाता है।

2. तबले को स्वर में मिलाना

कोई भी वाद्य हो, उसे एक स्वर में मिलाना आवश्यक है। तबले की ध्वनि किसी निश्चित स्वर में स्थापित करना होता है। कोई भी स्वर का तबला हो, उसका आधार पुड़ी पर लगाए हुए स्याही पर निर्भर करता है। तबले का स्वर मिलाने के लिए सारंगी, संवादिनी या तानपुरे के आधार पर करते हैं। संवादिनी के स्वर की आस और दाएँ की आस एकरूप होनी चाहिए। तभी वह तबला स्वर में मिलाया है, ऐसा कह सकते हैं। तबला स्वर में मिलाने के लिए, लकड़ी, पुड़ी स्याही जैसी अनेक बाबत निर्भर करती है। तबला कभी बैठक पर रखकर नहीं मिलाया जाता है। प्रथम गट्टे ठोककर स्वर की आवश्यकतानुसार कम-ज्यादा हथोड़े की सहायता से मिलाया जाता है। कई बार तबले का स्वर निश्चित स्वर से थोड़ा ऊँचा हो तो हलकी थाप या अँगूठे के दबाव से उस अंतर को दूर किया जाता है।

3. ताल का चुनाव :

एकल वादन करते समय ताल का चुनाव महत्त्वपूर्ण होता है। जिस ताल में एकल वादन करना हो, उस ताल का संपूर्ण ज्ञान वादक को होना आवश्यक है। जिस ताल में वादक ने वादन करने का तय किया है वह बजाने की अपनी क्षमता ध्यान में लेना जरूरी है। ताल के बोल एवं प्रकृति किस प्रकार की है उसका भी ध्यान रखना आवश्यक है। क्योंकि ताल के खुले बोल एवं बंद बोल के अनुसार वादन होता है।

4. लैहरावादक का चुनाव :

एकलवादन में, लैहरावादक का अस्तित्व बहुत महत्त्वपूर्ण है। मुख्य कलाकार कितनी भी सुंदर प्रस्तुति करें, परन्तु लैहरावादक, लय में समान न हो तो तबला वादक असफल हो जाता है। इसलिए लयदार लैहरावादक ही एकलवादन का सौंदर्य बढ़ाने में मदद करता है। मुख्य लैहरावादक का कार्य यह है कि, ताल के छंद और विभागानुसार लैहरा की रचना हो। जिससे मुख्य वादक को बजाते समय मात्रा का अंदाज हो सके। इसलिए, लैहरावादक की ताल के सभी ठेकों का एवं विभागों का ज्ञान अति आवश्यक है। लैहरा वादक को रागों का और तीनों प्रहर का ज्ञान होना जरूरी है। जिस समय तबलावादन हो रहा हो, उस समय का राग अगर पसंद करे तो एकलवादन और सही रूप से आकर्षक होता है। अत: लैहरावादक का चुनाव, एकलवादन का अविभाज्य घटक है।

5. व्यक्तित्व के गुणों का पालन :

यह एक महत्त्व घटक है कि, वादक को अपने विषय का तो ज्ञान होना आवश्यक तो है ही परन्तु उस ज्ञान के साथ विवेक और विनय का होना भी अति आवश्यक है। वादक के स्वभाव पर से उसके वादन में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। सर्वप्रथम वादक को स्वयं शरीर स्वच्छ रखना चाहिए। कार्यक्रम में गणवेश साफ-सुथरा और सादगीयुक्त होना चाहिए। जिससे श्रोताओं पर वादन के संबंध में अच्छा मत बनता है। वादन करते समय चेहरे पर प्रसन्नता होनी चाहिए। किसी प्रकार की व्यक्तिगत चिंता और समस्या श्रोताओं के समक्ष दिखाई नहीं पड़नी चाहिए। कार्यक्रम में वादन शुरू करने पर पूर्व श्रोताओं से, अधिकारीवर्ग का अभिवादन एवं उनकी आज्ञा लेकर वादन प्रारंभ करना चाहिए एवं अपने वाद्य के प्रति आदर होना जरूरी है। वादक को अपनी क्षमता और रियाज़ अनुसार एवं किसी की नकल न करते हुए, स्वयं की प्रस्तुति करनी चाहिए।

एकल वादन का आदर्श रचनाक्रम :

एकलवादन में सभी बंदिशों को निश्चित क्रम में प्रस्तुत करना आवश्यक है। क्योंकि सभी चीजों को एकत्रित करके उसे बजाने का ढंग विद्वानों ने चिंतन किया है। जो निम्न प्रकार से है:[3]

1. ठेका

ठेका शुद्ध और वजनदार बजना चाहिए। जिस लय में वादन करना हो वह स्पष्ट लय ठेके द्वारा लहरे देने वाले को प्राप्त होती है। इसलिए, ठेका स्पष्ट रूप से बजना चाहिए।

2. उठान :

एकलवादन को प्रारंभ करने से पूर्व उठान बजाकर चमत्कारिक ढंग से सम पर आकर सम से ही वादन प्रारंभ होता है। बनारस घराने के वादक 'उठान' से प्रारंभ करते हैं। ''कथक नृत्य के आरंभ में जो रचना प्रस्तुत की जाती है, उसे 'उठान' कहते हैं।''[4]

3. पेशकार

'पेशकार' यह फारसी भाषा का शब्द है। 'पेश' करना ऐसा अर्थ होता है। यह विलंबित लय में बजाया जाता है। यह एक 'वार्म-अप' क्रिया है। पं. अरविंद मुलगांवकरजी, पेशकार के बारे में अपना विचार रखते हैं कि—''मात्र पेशकार बजाने से वादक किस तरह पूरा वादन कर सकता है एवं वादक ने किस तरह तालीम पाई है, सोच-विचार, चिंतन की क्षमता कितनी है, उसका पूरा अंदाज आता है'' एकलवादन में पेशकार ही ऐसी बंदिश है, जो बंधनमुक्त है। याने इस बंदिश में लय-लयकारी, छंद, अनेक प्रकार की तिहाईयों का प्रयोग अपने विचार, चिंतन और रियाज़ से पेशकार सजा सकता है। फर्रूखाबाद घराने का पेशकार आज खूब प्रसिद्ध है। धिकडधिंता, तिटधिड़ान, धाधाधिंता, किडनक आदि बोलो का उपयोग पेशकार में किया जाता है। दिल्ली घराने का पेशकार मृदु बोलो का और दो उँगलियों से बजाया जाता है। अजराड़ा घराने के वादक पेशकार के बोलो का ही उपयोग करके पेशकार कायदा बजाते हैं। जिसे सुंदर और आकर्षक रूप से प्रस्तुत करते हैं। एकलवादन में पेशकार का प्रथम स्थान है।

4. कायदा

''कायदा सुनियोजित एवं सुनिश्चित व्यंजनप्रधान शब्द या शब्द समूह और उनके पुरक सहायक स्वरमय अंतिम शब्दों से बनी विस्तारर्क्षम, खाली-भरी युक्त और तालाकार कलापूर्ण रचना है।[5] कायदा अर्थात् नियम। हर एक कार्य में नियम होते हैं और उसी नियम से कोई भी कार्य सफल होता है। एकल वादन में कायदे का महत्त्व का स्थान है। बोलों की क्रमबद्ध रचना को कायदा कहते हैं। कायदे में दायाँ-बायाँ का संतुलन करके इसे प्रस्तुत किया जाता है। इसलिए तबला के विद्यार्थी को प्रारंभ में कायदा से ही प्रारंभ किया जाता है। तबला में हर बोल के कायदों की रचना विद्वानों ने की है। कायदे का विस्तार वादक अपने चिंतन से करता है। कायदे के दो भाग होते हैं—भरी और खाली। कायदे की रचना करते समय तालों के खंड अनुसार रचा जाता है। जिसका विस्तार सहज से हो सके, वो ही सही रूप में कायदा कहलाता है। कायदे की एकगुन, देढ़गुन, दुगुन, चौगुन आदि क्रमानुसार किया जाता है। कायदा बजाते समय नियमों का पालन करना अत्यंत जरूरी होता है।

5. रेला

''पुरक, चक्र गतिशील और शीघ्र गतिक्षम, शब्दों की खाली-भरी के तत्व से बनी हुई तथा ताल से नाता रखनेवाली विस्तारशील रचना को 'रेला' कहते है। ''रेला वह मध्य या द्रुत लय में बजाया जाता है। यह चौगुन या अठगुन में बजाया जाता है। रेले की 'रव' भी बजाई जाती है। पानी के प्रवाह की तरह रेला बजना चाहिए। वह बजाने के लिए वादक का रियाज़ खूब होना आवश्यक है। तिरकिट, धिरधिर, धिडनग, धाऽतिरकिटतकतिरकिट आदि शब्दों का रेला में प्रयोग किया जाता है। कहीं वादक रेला को कायम करके उसमें बंदिशे बजाते है।

6. मुखड़े, तुकड़े, चक्रदार, गतें, फरमाईशी आदि बंदिशों का वादन

रेला के पश्चात् मध्यलय एवं द्रुतलय में मुखड़े, गते, चक्रदार टुकड़े, फरमाईशी, कमाली आदि घरानेदार बंदिशों का वादन किया जाता है। पूरब बाज में अनेक प्रकार की सौंदर्य तत्व की गतों का प्रचलन है। बनारस घराने में देवी-देवताओं की स्तुति परन बजाई जाती है। दिल्ली घराने में दो उँगलियों की गतें बजाते हैं। परन, कमाली, फरमाईशी आदि खूबसूरती से बजाया जाता है। यह बंदिशे वादक पढंत करके बजाते हैं। वर्तमान समय में, एकलवादन प्रस्तुत करने की पद्धति में बदलाव आया है। घरानेदार वादन जो पेश होना चाहिए, वह कम सुनने को मिलता है। कार्यक्रम की समय मर्यादा भी उसका एक कारण है, परंतु वादक को अपने गुरु से पाई हुई तालिम और अपनी वादन परंपरा के नियम अनुसार ही वादन करना चाहिए।

वाद्य के साथ संगत

एकल वादन और वाद्य के साथ संगत दोनों स्वतंत्र विषय है। दोनों में वैचारिक, चिंतन और वादन में प्रयोग अलग-अलग होता है। उसका मुख्य कारण यह है कि, सोलो में वादक अपनी लय को आधार रखकन अपना वादन प्रस्तुत करता है। परंतु संगत में, मुख्य कलाकार की लय को समझकर संगत की जाती है। 'संगत' शब्द का अर्थ है कि, किसी के साथ उसके अनुसार जाना या चलना। वह वादन तंतुवाद्य के साथ हो, सुचिर वाद्य के साथ हो, उसे न्यायपूर्वक संगत करना वादक का कर्तव्य है। इसलिए संगत को विद्वानों ने कठिन माना है।

वाद्य के साथ संगत करते समय वादक को विशेष तालीम लेना जरूरी है। वाद्य की संगति में, कलाकार अपनी कल्पनाशक्ति अनुसार संगति करता है। परंतु प्रत्येक वाद्य के साथ घरानेदार संगत करने कि अपनी निजी शैली होती है। सुयोग्य संगत वर्तमान समय में स्पष्ट रूप से कम सुनने को मिलती है। आज की संगत में, श्रोताओं को खुश करने का हेतु देखने को मिलता है। इसके अंतर्गत मुख्य कलाकार किसी निश्चित राग में सर्वप्रथम आलाप, जोड़, झाला बजाते है। उसमें वादक को मात्र अवलोकन करना होता है, बजाना नहीं। तत्पश्चात्, मुख्य कलाकार विलंबित तीन ताल, रूपक, झपताल, वसंत, रूद्र आदि कोई एक ताल में मसीतखानी गत बजाते हैं। जिसमें वादक को लय समझकर एक प्रभावी उठान या पेशकार से वादन प्रारंभ करके अलग-अलग लयकारियाँ, जाति का प्रयोग करके अंत में आकर्षक तिहाई बजाकर समय पर आते हैं। तब श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाते है। यहाँ वादक को बजाने की स्वतंत्रता होती है, परंतु लय के अनुसार क्या और कितना बजाना है यह ज्ञान वादक को होना जरूरी है। ताकि कहीं, श्रोताओं को कार्यक्रम तबला सेलो का न लगे उसका ध्यान वादक को होना चाहिए। तत्पश्चात धीरे-धीरे क्रमशः लय बढ़ती है, तब बीच-बीच में मुख्य कलाकार अपना विचार श्रोताओं के सामने रखता है, तब मात्र वादक को सुंदर, सात्विक, शुद्ध ठेका बजाना चाहिए। जिससे मुख्य कलाकार को हानि न हो।

मध्यलय में मुख्य कलाकार रजाखानी गत प्रस्तुत करता है, यानी मध्यलय त्रिताल, एकताल में बंदिश प्रस्तुत करते हैं, उसमें भी वादक कलाकार को मुखड़े, तुकड़े, रेला आदि बजाने का मौका मिलता है। तंत्र वाद्य के साथ संगत करते समय वादक का रियाज़ होना चाहिए। दायाँ-बायाँ का संतुलन उत्तम प्रकार से होना जरूरी है, तभी वह असरकारक संगत कहलाएगी। अंत में तंत्र वादक अतिद्रुत लय में झाला बजाता है। जिसमें वादक को ''ना धिं धिं ना'' अति द्रुत लय में बजाना पड़ता है। तब उसमें ध्वनि, नाद, दाब-आस आदि का सुंदर संयोग सुनाई पड़ता है। अंत में मुख्य कलाकार 'सवाल-जवाब' की स्वरों से जुगलबंदी करते है, जिसमें तबला वादक को उसका अनुकरण करके बोलों द्वारा वादन करते हैं। और अंत में आकर्षक तिहाई से या चक्रदार तिहाई से कार्यक्रम की समाप्ति करते हैं।

वाद्यों की संगति में प्रत्येक वाद्य की संगति अलग-अलग पद्धति से की जाती है। जैसे सितार, सरोद, बाँसुरी, वीणा आदि। यानी वाद्य के स्वभाव के अनुरूप भी संगति में बदलाव आता है। जिस वाद्य का स्वभाव श्रृंगारिक है जैसे संतूर और बाँसुरी के साथ कोमल और बंद बाज के बोलों का प्रयोग ज्यादा अच्छा लगता है। सितार, सरोद, मोहनवीणा के साथ बजाते समय बंद बोलों के साथ-साथ खुले बोलों का भी प्रभाव खूब अच्छा पड़ता है। इसका क्रियात्मक कहीं विद्वानों के ध्वनिफित में सुनने को मिलता है। वाद्यों की साथ संगत करते समय वादक को खूब धैर्य रखना पड़ता है। पं. सामता प्रसाद जी कहते थे कि, साथ संगत करते समय दिल पे पत्थर रखकर बजाना पड़ता है। पं. सुरेश तलवलकर जी कहते हैं कि—''साथ संगत मुख्य कलाकार के साथ चलना है, आगे भी नहीं और पीछे भी नहीं।'' पं. योगेश समसीजी ने उनके वक्तव्य में कहा था कि—''साथ संगत करते समय वादक को शारीरिक और बौद्धिक दोनों अवस्था अच्छी हो तो वह यथायोग्य संगत साबित होती है।''

संगत करते समय वादक का मुख्य उद्देश्य मुख्य कलाकार का कार्यक्रम अधिक सुंदर हो यह होना चाहिए। कई बार मुख्य कलाकार कोई युवा हो या विद्वान हो, उसकी यदि कोई भूल या त्रुटि हो उसको संभालना या कई चीज़ों को उजागर न करना, उनकी मान प्रतिष्ठा रखना, यह तबलावादक का मुख्य धर्म है ऐसा शोधार्थी मानते हैं।

बाज और घराने

प्राचीन काल में संगीत सिखने के लिए कोई विद्यालयीन व्यवस्था नहीं थी। और उस समय संगीत की मनोरंजन न मानकर एक साधना के रूप में माना जाता था। उस समय केवल गुरु-शिष्य परंपरा थी। उसी गुरु-शिष्य परंपरा द्वारा तालीम, अनुशासन, नियमों के पालन द्वारा जो शैली निर्माण हुई उस परंपरा को वर्तमान में 'घराना' कहा जाता है। प्राचीन काल में 'संप्रदाय' में कहा जाता था। तबले का प्रथम घराना 'दिल्ली' घराना है। इसी घराने से अलग-अलग विद्वानों ने अपने चिंतन से नई पद्धति और वादनशैली की नींव रखी। वह 'घराना' या 'शैली' के नाम से प्रसिद्ध हुई। तबले में बाज और घरानों का घनिष्ठ संबंध है। घरानों की मान्यता एकमात्र आधार 'बाज' पर है। जिन्हें वादनशैली भी कहते हैं। याने 'बाज' विस्तृत है और घराने उसके अंतर्गत आते है। पं. सुधिर माईणकर के अनुसार, ''तबले में केवल निकास की शैली से घराने बने है।''

तबले के दो प्रमुख बाज है—1. बंद बाज, 2. खुला बाज। बाज याने वादनशैली। तबले पर बजनेवाले अलग-अलग बोलों के निकास को उत्पन्न करना। तबले के छ: घराने बाज के अंतर्गत आते हैं। बंद बाज के अंतर्गत दिल्ली ओर अजराड़ा घराने का समावेश होता है। और खुला बाज के अंतर्गत फर्रूखाबाद, बनारस, लखनऊ और पंजाब घराने का समावेश होता है। बंद बाज को 'पश्चिम बाज' कहते हैं। और खुला बाज को 'पूरब बाज' कहते हैं।

1. बंद बाज :

इस बाज के अंतर्गत दायाँ और बायाँ में से निकलनेवाली नाद की ध्वनि मर्यादित होती है। और मर्यादित ध्वनि में तैयारी अधिक दिखाई देती है। इसलिए, इस बाज में कायदे अधिक है। क्योंकि कायदा और रेला यह ऐसी बंदिशे है कि दोनों हाथों की उँगलियों को महत्त्व दिए बिना जल्द गति में बजा नहीं सकते। इसलिए, इस बाज में दोनों हाथों का पूरा प्रयोग होता है। इस बाज में दाएँ की चांटी और बाएँ की स्याही के आगे के हिस्से को हाथ उठाए बिना बजाने का महत्त्व दिया है। पखावज में बजनेवाले बोलों के नाद का बंद बाज पर बिलकुल परिणाम नहीं हुआ है। वह विद्वानों का बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान है।[6]

2. खुला पखावज

इस बाज में बंद बाज के विरुद्ध वादन-शैली या निकास का प्रयोग होता है। पखावज के बोलो की पूर्ण शैली इस बाज पर पड़ी है। इस बाज पर नाद निर्माण करने के लिए संपूर्ण पंजे का प्रयोग भी किया जाता है। दाएँ पर मैदान (लव) पर उँगलियों का प्रयोग और बाएँ पर खुले हाथ का प्रयोग किया जाता है। इसलिए, इस बाज में गत, तोड़े, गतपरन, चक्रदार आदि बंदिशों का अधिक तौर से प्रयोग किया जाता है, और लव पर एवं पंजे से बजनेवाले बोलों को निकालने के लिए अधिक श्रम और रियाज़ करना पड़ता है।

घरानो के निर्माण के लिए, कुछ कारण आवश्यक थे। जिसमें पखावज से तबले का निर्माण होने के बाद वह ज्यादातर साथ-संगति (गायन) में उपयोग में आने लगा। परंतु तबले को स्वतंत्र पहचान देने के लिए तबले की बंदिशों का निर्माण करना आवश्यक था और उसका मूल तो पखावज ही था। तो कहीं पखावज की बंदिशों को तबले पर किस तरह बजाया जाय उसका चिंतन विद्वानों ने किया। और उसमें दो बातें महसूस हुई— 1. पखावज की बंदिशों में जरूरी सुधार करके तबले पर बजाए जाए, 2. तबले की स्वतंत्र बंदिशों का निर्माण हो। ये दोनों मुख्य घटना के कारण घराने निर्माण करने की आवश्यकता हुई। दूसरे अन्य कारण इस प्रकार से हैं[7]—

1. राजनैतिक एवं सांस्कृतिक स्थिति
2. स्थानीय सांगीतिक स्थिति
3. राजाश्रय
4. लोकरुचि
5. गुरु-शिष्य परंपरा का प्रचार-प्रसार

घरानेदार बंदिशे एवं उसके निकास में काफी बदलाव देखने को मिलता है। बंदिशे और उसका निकास सही ढंग से प्रस्तुत होना आवश्यक है। तत्पश्चात आज का विद्यार्थी इंटरनेट के माध्यम से ऑडियो/वीडियो सुनकर ठीक उसी प्रकार से नकल करके बजाने की कोशिश करता है। परंतु यह सिखने का गलत तरीका है। गुरु से तालिम लेकर, सीना-ब-सीना तालिम पाकर वादन प्रस्तुत करना ही योग्यता है। जिससे सही निकास बजता है।

यह सभी कारणों से घरानों का जन्म हुआ। अब घरानों की मुख्य विशेषता देखेंगे—

तबले के घरानों की विशेषताएँ

1. दिल्ली घराना (उस्ताद सिद्धार खाँ)

- कोमल तथा मधुर बाज है।
- तर्जनी और मध्यमा उँगली का अधिक प्रयोग।
- चाँटी की प्रधानता।
- चाँटी का बाज 'किनार का बाज' नाम से प्रसिद्ध।
- अधिक रचनाएँ चतुस्त्र जाति की है।
- तिरकिट, तिट, धातीधागे, धागेनधा आदि बोलों का प्रयोग।
- कायदे, गतें, टुकड़ा, चक्रदार, रेला आदि वादन में बजाया जाता है।

2. अजराड़ा घराना (उस्ताद कल्लू खाँ—मीरू खाँ)

- मुख्य 'अनामिका' उँगली का प्रयोग 'न' शब्द से किया।
- बाएँ का प्रयोग मींडयुक्त घुमाव तथा दाएँ के बोल से लड़ंत करना।
- कायदे अधिक कठिन और निकास बोलों का अलग होता है।
- तिश्र, चतुश्र जाति का काम इस घराने में ज्यादा होता है।
- कहीं कायदों में खाली के स्थान पर छट बजती है।
- स्वतंत्र वादन के लिए उपयुक्त घराना है।

3. फर्रूखाबाद घराना (उस्ताद हाजी. विलायत अली खाँ)

- चाँटी खुली और जोरदार है।
- गतों का चलन अधिक है।
- रेला, रौ, चक्रदार आदि खूबसूरत ढंग से प्रस्तुत किया जाता है।
- धिंकडधिंता, पेशकार की रचना जो सभी वादक बजाते हैं।
- तक तक, धिनगीन, धीरधीर, धिनतीन आदि बोलों का प्रयोग।
- स्वतंत्र वादन के लिए उपयुक्त बाज।
- लय-लयकारी, जाति का प्रयोग।

4. बनारस घराना : (पं. रामसहाय मिश्रा)

- अनामिका को टेढ़ी करके, लव पर प्रहार करके ध्वनि की उत्पत्ति।
- ठेके को विविध प्रकार से बजाया जाता है।
- पेशकार के स्थान पर उठान बजाया जाता है।
- चक्रदार, रेले, परन, बाँट, फर्द, तुकड़े, लग्गी-लड़ी, चलन-चाल, भगवान की स्तुति परन बजाई जाती है।
- मर्दानी और जनानी गतें प्रसिद्ध है।
- निकास और बोल पूरे पंजे से बजाते है।
- तैयारी और गति के साथ बोलों की स्पष्टता दिखती है।
- स्वतंत्र वादन और संगत के लिए उपयुक्त।

5. लखनऊ घराना : (उस्ताद मोदुखाँ)

- स्याही तथा लव का अधिक प्रयोग।
- अधिकतर दिल्ली का बाज खुले वादन में परिवर्तित हुआ।
- वादन में सभी उँगलियों का प्रयोग।
- नौहक्का, कमाली चक्रदार, गतें, निसर्ग की गतें, गतपरण, तुकड़े आदि बजाए जाते है।
- धूँगा, तकड़, घेता, घेडनतराऽन् आदि शब्दों का प्रयोग।
- नृत्य का वादन पर अधिक प्रभाव।

6. पंजाब घराना : (पंडित भवानीदासजी)

- पखावज से प्रभावित होने से जोरदार, खुले बोलो का प्रयोग।
- कठिन लयकारी का प्रयोग।
- पेशकार के स्थान पर फर्शबंदी।
- भाषा का प्रभाव बोलों पर होता है।
- पढंत स्पष्ट और स्वच्छ करते है।
- बाएँ पर मींड काम।
- बंदिशों में श्रृंगारिक आक्रमकता, वीर रस, गति की तीव्रता।

कलाकार की सृजनात्मक क्षमता:

गुरु-शिष्य परंपरा के अंतर्गत वादक अपनी कला सिखकर, रियाज़ से तथा गुरुजनों के आशीर्वाद से कलाकार बनता है। कलाकार याने कला को आकार देनेवाला। मतलब जो गुरुजनों से सिखा है, उसी में अपने स्वयं विचार, चिंतन बढ़ाना या जो सिखा हुआ है, उससे आगे अपनी नवीनता रखना, वह कलाकार की सृजनात्मक क्षमता है। परन्तु नया क्या रखना ? यह भी एक प्रश्न है। क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि नए करने में जो है वह भी नष्ट हो जाय। तालयोगी पं. सुरेश तलवलकरजी कहते हैं कि—''जो गुरु ने सिखाया है, उसी परंपरा को हानि न पहुँचाते हुए, प्रत्येक कलाकार ने अपनी बुद्धि से, प्रतिभा से उसी कला में कुछ बातें नई प्रस्तुत करना जो कला के साथा आगे का पाया रखनेवाली हो।'' कुछ भी नए फैशन या तकनीक करना या प्रयोग के नाम पर अपने दोष को छुपाना, बेझिझक विचार होना आदि बाबतें सृजनात्मकता होती ही हैं।

कलाकार की सृजनात्मक क्षमता उसके रियाज़, चिंतन और अनुभव से बढ़ती है। सृजनात्मकता तो कलाकार में होनी ही चाहिए, तभी वह सफल और विद्वान कलाकार होगा। आज के युग में उस्ताद ज़ाकिर हुसैन, उस्ताद शाहिद परवेज़ और पंडित उल्हास कशालकर जैसे अनेक कलाकार है, जिन्होंने अपनी स्वयं एक शैली निर्माण की, परंतु उस नवीन शैली में कहीं भी परंपरा और घरानों के मूल्यों को हानि नहीं पहुँचने दी।[8]

परंपरा के मूल्यों का आकार से सम्मान करते हुए उसमें अपने विचार प्रस्तुत किए। सृजनात्मकता किसी कलाकार की ऐसी हो, जिसे आनेवाली पीढ़ी के कला साधक उस विचार को अपनाए। तभी वह सही रूप में सृजनात्मकता साबित होगी। यहाँ एक चीज महत्त्व की है, कि सृजनात्मक क्षमता कलाकार की स्वयं की होनी चाहिए, किसी की नकल या अनुकरण करने से सृजनात्मकता नहीं कहलाती।

सन्दर्भ

1. मराठे, मनोहर, ताल वाद्य शास्त्र—एक विवेचन, पुस्तक सदन, ग्वालियर, पृ. 22
2. मुलगांवकर, अरविंद, तबला, पोपयुलर प्रकाशन, मुंबई, 2016, पृ. 212
3. Op. cit., मराठे, मनोहर, पृ. 22
4. माईणकर, सुधिर, तबला वादन में निहित सौंदर्य, सरस्वती प्रकाशन, मुंबई, पृ. 243
5. वही, पृ. 243
6. Op. cit., मुलगांवकर, अरविंद, पृ. 212
7. Op. cit., मराठे, मनोहर, पृ. 188
8. तलवलकर, सुरेश, राजहंस प्रकाशन पुणे, पृ. 25, 2005